॥ प्रस्तावना ॥

यह सज्जनचित्तवल्लभ आगे श्रीमान भाई मुन्शी अमनसिंह जी अपीलनवीस ने छपायाथा जिसमें मूल संस्कृत फिर पदच्छेद संस्कृत. अन्वय संस्कृत, टीका संस्कृत और भाषाछंद भाषाटीका ऐसेछःप्रकार का लेखथा परंतु हमारे जैनी भाइयों में कुछ दिनसे संस्कृत विद्या का ऐसा अभाव हुआहै कि हज़ारों तो क्या लाखों में दोचार कुछ २ पढ़ते हैं इससे ऐसा परमोपकारी ग्रंथ उन भाइयों को जो संस्कृत पढ़ना व्याधि समझते हैं ज़हर का प्याला जंचनेलगा अनेक भाइयों ने मुझको लिखा कि भाई साहब आप केवल एक सरल भाषाटीका सहित छपवाओ तो बड़ा उपकार होगा सो अनेक भाइयों कीप्रार्थनासे छपाया जाता है कि सब को धर्मलाभ होवे ॥

आपलोगोंका हितैषी सेवक

मुन्शी नाथूराम लमेचू भाई

॥ ॐ नमःसिद्धं ॥

श्रीसज्जनचित्तवल्लभ काव्य प्रारभ्यते

(शार्दूल विक्रीडित छंद)

नत्वावीरजिनंजगत्त्रयगुरुम्मुक्ति श्रियोवल्लभम् पुष्पेपुत्तयनीतिवाण निवहंसंसारदुःखापहं । वक्ष्येभव्य जनप्रबोधजननं ग्रंथंसमासादहं ना म्नासज्जनचित्तवल्लभमिमं शृण्वंतु सन्तोजनाः ॥ १ ॥

॥ भाषाटीका ॥

मैं मल्लिषेन नाम आचार्य इस ग्रंथको कहूंगा। क्या करके वीरजिनेंद्र को नमस्कार करके। कैसे हैं वीर जिनेंद्र ऊर्ध्व मध्य अधः तीनोंलोकके स्वामी हैं। फिर कैसेहैं वीर जिनेंद्र मुक्ति स्त्री के पति हैं फिर कैसे हैं वीरजिनेंद्र कि कामदेव के शोषण १ तापन २ उच्चाटन ३ मोहन ४ वशीकरण ५ रूप पंचबाणों के छेदने को शीलरूप बाणके धारक हैं। फिर कैसेहैं

वीरजिनेंद्र संसारमें जन्मन मरण जरा ये त्रिदोष तिन कर पीड़ित देव मनुष्य तिर्यंच नर्क गतियों के प्राणी तिनके दुःखों को नाश करने वाले हैं । और कैसाहै ग्रंथ कि भव्य जीवोंको ज्ञानका देनेवाला है और सज्जन पुरुषों के चित्तको प्यारा आनंद देनेवाला ऐसा सार्थक सज्जनचित्तवल्लभ है तिसको संक्षेप रूप है सत्पुरुषो तुम सुनो ॥

रात्रिश्चन्द्रमसा बिनाब्जनिवहैर्नो भातिपद्माकरो यद्वत्परिडतलोकवर्जितसभादन्तीवदन्तंविना । पुष्पंगन्धविवर्जितंमृतपतिः स्त्रीचेहतद्वन्मुनिश्चारित्रेण बिनानभातिसततंयद्यप्यसौशास्त्रवान ॥ २ ॥

॥ भाषाटीका ॥

(हेमुनि) चारित्र रहित मुनि शोभा नहीं पाता । जैसे चंद्रमाके बिना अंधियारी रात्रि शोभा नहीं पाती तैसेही कमलों के बिना सरोवर शोभा को नहीं पाता । तथा पण्डित लोगोंके बिना सभा शोभाको नहीं पाती

दांतों के विना हाथी शोभाको नहीं पाता। अथवा सुगंधके विना पुष्प शोभा को नहीं पाते। वा पतिके मरनेपर विधवा स्त्री शोभा को नहीं पाती। ऐसेही चारित्र (शुद्धाचरण) विना मुनि शोभाको नहीं पाता चाहो कैसाही शास्त्रों का ज्ञाता (जाननेवाला) क्यों न होवे। कारणकि क्रियाविना ज्ञानकेवलबोझाहै।

किंवस्त्रंत्यजनेनभोमुनिरसावेतावता जायतेच्वेडेनच्युतपन्नगोगतविषः किंजातवानभूतले। मूलंकिंतपसःच्क्षमेंद्रियजयःसत्यंसदाचारता रागादींश्चबिभर्तिचेन्नसयाति लिंगीभवेत्केवलम् ॥ ३ ॥

॥ भाषाटीका ॥

हे मुनि क्या इनवस्त्रों के त्यागने से मुनि हो जाता है (अर्थात् नग्न होनेसेही महाव्रती न बनो) क्या कांचली के छोड़ने से पृथ्वीपर सर्प निर्विष होजाता है ? (कदापि नहीं होता है) तपका मूल क्या है ? (अर्थात् तप कैसे निश्चल रहसकता है ?) ऐसा प्रश्न होते उत्तर करते हैं कि तपके मूल ये हैं। उत्तम

क्षमा, स्पर्शन रसन घ्राण चक्षु श्रवण ये पाच विषयाभिलाषिणी इन्द्रियां हैं इनको जीतना। सत्यवचन बोलना श्रेष्ठ शुद्ध आचरण पालना अर्थात् दोष न लगाना। और जो हृदय में रागादिकों कोही बढ़ाया अर्थात् धन धान्य सवारी चेले महल वस्त्र भूषणादि परिग्रहोंकी अंतरंग में चाह करी तो यह मुनि मुद्रा तो केवल भेष मात्रही हुई (इससे मुनिको अन्तरंग परिग्रह प्रथम छोड़ना योग्य हैं)॥

देहेनिर्ममतागुरौबिनयतानित्यंश्रुताभ्यासताचारित्रोज्वलतामहोपशमतासंसारनिर्वेगता। अन्तरवाह्यपरिग्रहत्यजनताधर्मज्ञतासाधुतासाधोसाधुजनस्यलक्षणमिदंसन्सारविक्षेपणम्॥ ४॥

॥ भाषाटीका॥

हे साधु साधु जनोंके ये लक्षण संसार (भवभ्रमण) के नाश करने वाले हैं। सो कौन? तिनको कहतेहैं। शरीरसे ममत्व न करना। गुरुजन जो गुण

वृद्ध वय वृद्ध तप वृद्ध पुरुषहैं तिनका विनय (आदरमान) करना । और प्रतिदिन धर्मशास्त्रोंका अभ्यासकरना । और चारित्र (जपतपव्रत क्रिया) को उज्ज्वलता अर्थात् शुद्धता से निर्दोष पालना (आचरण करना) और क्रोध मान माया लोभ मोह और काम इनको उपशम (शांति) करना । और संसार (भव भ्रमण) से डरना और मिथ्यात्व १ क्रोध २ मान ३ माया ४ लोभ ५ हास्य ६ रति ७ अरति ८ शोक ९ भय १० ग्लानि ११ स्त्रीवेद १२ पुरुषवेद १३ नपुंसकवेद १४ यह १४ प्रकार अंतरंग परिग्रह और क्षेत्र १ वास्तु २ हिरण्य ३ सुवर्ण ४ धन ५ धान्य ६ दासी ७ दास ८ कूप्य ९ भांड १० ये १० वाह्य परिगृहका त्याग करना । और उत्तम क्षमा १ मार्दव २ आर्जव ३ सत्य ४ शौच्य ५ संयम ६ तप ७ त्याग ८ आकिंचन ९ ब्रह्मचर्य १० ये दशप्रकार धर्मका जानना पालना ये साधुओं के लक्षणहैं ४ ॥

किन्दीक्षाग्रहणेन तेयदिधनाकांक्षाभवेच्चेतसि किङ्गार्हस्थमनेनवेशधरणे- ।सुन्दरम्मन्यसे । द्रव्योपार्ज

नृचित्तमेवकथयत्यभ्यन्तरस्थाङ्गना
नोचेदर्थ परिग्रह ग्रहमतिर्भिक्षोनस
म्पद्यते ॥ ५ ॥

॥ भाषाटीका ॥

हे भिक्षुक (मुनि) जो तेरे चित्तमें धनकी (द्रव्य की) वांछा है अर्थात् तू धनको चाहता है, तो दिक्षा ग्रहने से क्या ? अर्थात् क्या कार्यसरा और काहेको धारण की । क्या गृहस्थ का वेश (जो वस्त्राभूषण सहित है) मुनिके नग्न वेशसे बुरा जान पड़ताहै । अब तू जो द्रव्य के उपार्जन को मनसे चेष्टा करताहै उससे तो तुझे स्त्रीकी चाह जानीजाती है । क्योंकि स्त्री की चाह न होती तो धन लेनेकी बुद्धिकैसे उत्पन्न होती ? काहे से कि उदर पूर्णाको भोजन तो भाग्यानुकूल गृहस्थोंके घरमें मिलही जाता है फिर धन क्यों चाहता है । हे मुनि ऐसे आचरणसे तो मुनिपद को बहुत कलंक लगता है ॥ ५ ॥

योषापाण्डुकगोविवर्जितपदेसंति
ष्टभिक्षोसदा भुक्त्वाहारमकारितंप

रगृहेलब्धंयथासम्भवम्। पडावश्यकसत्क्रियासुनिरतो धर्म्मानुरागं वहन् सार्द्धंयोगिभिरात्मभावनपरो रत्नत्रयालंकृतः॥ ६॥

॥ भाषाटीका॥

हेमुनि तू नारी नपुंशक और पशुओंसे रहितस्थान में सदाकाल रह। कहा करके पराये गृह अर्थात् गृहस्थों के घरमें जो उन्होंने तेरेलिये नहीं बनाया अर्थात् अपने लिये बनाया है सो रूखा सूखा (चिकनाईरहित वा दाल तरकारी रहित) जो तुझे तेरे भोगांतराय के क्षयोपशम अनुसार मिलजावे ऐसा भोजन करके और त्रिकाल सामायक १ पंचपरमेष्ठीकास्तवन २ तथापंचपरमेष्ठीकी वंदना ३ प्रतिक्रमण ४ प्रत्याख्यान ५ कायोत्सर्ग ६ ये छः आवश्यकरूप सत्क्रियाओंको करता और दशलक्षण धर्म में प्रेम धरके आत्मभाव में लगताहुआ सम्यक् रत्नत्रय (सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्र) के धारकऐसे मुनिजनोंके साथ में वासकर॥ ६॥

दुर्गन्धंवदनंवपुर्मलभृतम्भिक्षाट

नाङ्घ्रोजनं शय्यास्थरिडलभूमिपुप्र
तिदिनंकव्यांनतेकर्पटम् । मुराडंमु
रिडतमर्द्धदग्धशववत्त्वंदृश्यतेभोज
नैःसाधोद्याप्यबलाजनस्यभवतोगो
ष्ठीकथंरोचते ॥ ७ ॥

॥ भाषाटीका ॥

हे साधु तेरे मुखमें दुर्गंध आती है कारण की तूने दंतधोवन (दांतोन) का त्याग किया है। और शरीर रज से मैला होरहा है। क्योंकि स्नान करनेका भी त्याग कियाहै। और पराये गृहमें भिक्षा भोजन करता है। कारण कि आरंभ परिग्रहकात्यागीहै। और कठोर कंकरीली भूमिपर नित्य सोताहै क्योंकि पलंग विस्तर का त्यागी है और कटि में कोपीनतक नहींहै कारण कि सर्व प्रकारके वस्त्रोंका त्याग किया है इससे लोगों की दृष्टि में अधजले मुर्देकी तुल्य भयंकररूप दृष्टि पड़ता है सो अब भी तू स्त्रीजनोंके साथ वचनालाप करनेके लिये मनको लुभाता है सो क्यों मन भ्रमाता है देख! जोपुरुष पानादि सुगंधित पदार्थखाते नित्य

स्नान विलेपन करते और नानाप्रकार के सरस भो-जन कर वस्त्राभूषणोंसे अलंकृत रहतेहैं स्त्रियों के चित्तको तो सो पुरुष प्यारे होतेहैं तू क्यों मन चला-कर ब्रह्मचर्य रत्न को नाश करता ॥ ७ ॥

अङ्गंशोणितशुक्रसम्भवमिदंमेदोस्थिमज्जाकुलम् वाह्येमाक्षिकपत्रसन्निभमहोचर्मावृतंसर्वतः । नोचेत्काकवकादिभिर्वपुरहो जायेतभक्ष्यंध्रुवं दृष्ट्वाद्यापिशरीरसद्मनिकथं निर्वेगतानास्तिते ॥ ८ ॥

॥ भाषाटीका ॥

इस शरीर रूपघर सेतू उदास नहीं होता सोवड़ा आश्चर्यहै। कैसाहै यहशरीर माताके रुधिर और पिताके वीर्यसे तो उत्पन्न भयाहै और मेद हाड़ मज्जाके समूह सेभरा महा अपवित्रहै फिर कैसाहै यह शरीर बाहरसे मक्खीके पंखके समान पतली खालसे मढ़ाहै यदिसर्व ओर सेमढ़ा नहोता तो रक्त मांस देखकर हिंसक मांस भक्षी पक्षी काग बगुला आदि इसे

नोच २ कर खाजाते सोऐसा अपवित्र और घिनावना शरीर रूप घर तिसे देखकर तुझे इससे चित्तमें बिरक्तता नहीं होती सोबड़ा आश्चर्य है ॥ ८ ॥

दुर्गन्धंनवभिर्वपुःप्रवहतिद्वारैरिदं संततं तद्दृष्ट्वापिचयस्यचेतसिपुनर्निर्वेगतानास्तिचित् । तस्यान्यद्भुतविवस्तुकीदृशमहो तत्कारणं कथ्यताम् श्रीखंडादि भिरङ्गसंस्कृति रियंव्याख्यातिदुर्गन्धताम्॥ ९ ॥

॥ भाषाटीका ॥

यह शरीर महा दुर्गंधित है फिर कैसाहै यहशरीर नवद्वारोंसे (दो नाकके द्वारोंसे रहंट दो आंखोंके द्वारों से कीचड़ दो कानों के द्वारोंसे ठेंठ और एक मुहसे खखार और एक लिंगद्वारसे मूत्रवीर्य और एक गुदा द्वारसे मल) सदा अपवित्र दुर्गंधित झरेहै तिसको देखकर भी जिसके चित्तमें यदि ऐसे शरीरसे बिरागता (उदासीनता)नहींहै तोकहिये भूमण्डलपर और कौनसी वस्तु ऐसी होगी कि जो तिसको बिरागता

का कारण होगी । क्योंकि यहकेसर चंदनादि का सं· स्कार शरीरकी दुर्गंधता को प्रगट करताहै । भावार्थ केसर चंदन आदि सुगन्धित पदार्थ शरीरसे लगते ही दुर्गंधित होजाते हैं इससे शरीर प्रगट पने मलि न दुर्गंधित और अपवित्र समझो ॥ ९ ॥

स्त्रीणांभावविलासविभ्रमगतिंदृष्ट्वा नुरागंमना ग्मागास्त्वंविपवृक्षपक्व फलवत्सुस्वादवन्त्यस्तदा । ईपत्से वनमात्रतोपिमरणं पुंसांप्रयच्छान्ति भोः तस्माद्दृष्टिविपाहिवत्परिहरत्वं दूरतोमृत्यवे ॥ १० ॥

॥ भाष.टीका ॥

हे मुनि स्त्रियोंकी भावविलास विभ्रम गतिको (ना· ना प्रकारके वहानों पे अंग दिखाना मटकाना मुसक्या- ना सेन चलाना, गाना प्रेमदिखाना, अनेकभांति चेष्टा करना इत्यादि चालको) देखकर तूतनक भी अपने मनमें अनुराग (प्रेम) मतकर । कैसीहैं येस्त्रियां । विषवृक्ष के पके फलवत सुन्दर स्वादवाली हैं । और

किंचिन्मात्र सेवनसे मृत्युको देतीहैं ॥ जैसे विषवृक्ष कापका हुआ विकारी फलखानेमें तो सुस्वादहै परंतु थोड़ासा भीखानेसे अल्पकाल में विकार (रोग) बढ़ाकर प्राणलेताहै । तैसेही येस्त्रियां भोगके समयतो सुन्दर प्रियलगतीहैं परंतु अन्तमें निर्बलता उपदंश मूत्र कृच्छ्र, प्रमेह आदि रोगकर मरण कोप्राप्ति करतीहैं । और परभवमें दुर्गति को पहुंचाती हैं । इस लिये दृष्टि विषजाति केसर्प समान इनको भयंकरजानतू दूरही से छोड़दे ॥ १० ॥

यद्यद्वाञ्छतितत्तदेववपुषे दत्तंसुपुष्टंत्वया सार्द्धंनैतितथापिते जड़मते मित्रादयोयान्तिकिम्।पुण्यंपापमितिद्वयञ्च भवतः पृष्टेनुयातीहते तस्मान्मास्म कृथामनागपिभवान्मोहंशरीरादिषु ॥ ११ ॥

॥ भाषाटीका ॥

हे जड़मति हे अज्ञान जो जो वस्तु यह शरीर चाहताहै सोसो सर्व पुष्टकारी सुस्वादु वस्तु तूने इसेदीं अर्थात् अनेक प्रकारकी पुष्टकारी सुस्वादु वस्तुओंसे

तूने इसेपोषा, तोभी यह कृतघ्न मित्रवत शरीर तेरे साथ नहीं जायगा। तोये जिनको तूइष्ट मित्रमानरहा है॥ और तुझसे प्रत्यक्ष भिन्नहैं सो कैसे तेरेसाथ जावेंगे। तेरेसाथ तो तेरे किएहुए पुण्य वा पाप दोही पीछे २ चलेंगे अर्थात् जहां तू जन्म लेगा तहांही वे अपना २ फल देने लगेंगे। इससे तू अब रंचमात्र भी शरीर से वा मित्र बांधवों से (संसार में फंसाने वाला) रागभाव मतकर यही तुझको परमोपकारी शिक्षा है॥ ११॥

शोचन्तेनमृतं कदापिवनितायद्यस्तिगेहेधनं तच्चेनास्तिरुदन्तिजीवनधियास्मृत्वापुनःप्रत्यहं। कृत्वातद्दहनाक्रियां निजनिजव्यापार चिंताकुलातन्नामापिच विस्मरन्तिकतिभिः सम्वत्सरैःयोपिताः॥ १२॥

॥ भाषाटीका॥

यदि घर में लक्ष्मी होवे तो स्त्री भी पति के मरने पर शोक संताप नहीं करती है। और जो घरमें धन

नहीं होवे तो अपने जीतव्य की इच्छा धारण करके प्रतिदिन मरे पतिको स्मरण कर कर अवश्य रोती है और उसकी दग्ध क्रिया करके सम्बन्धीजन सब अपने २ व्यापारिक कार्यों में चिन्तातुर होजाते हैं । और कुछवर्ष व्यतीत होनेपर पत्नी उसका नाम भी भूल जाती है अर्थात् कभी स्मर्ण नहीं करती है । सारांश संसार में कोई किसी का सम्बन्धी नहीं है । सबलोग अपने २ स्वार्थ के सगे हैं । जहां स्वार्थ साधन नहीं देखते चट अलग होजाते हैं फिर ऐसे अपस्वार्थी लोगों के मिथ्या प्रेममें फंसकर जीवको अपनाअनहित करना उचित नहीं है ॥ १२ ॥

अष्टाविंशतिभेदमात्मनिपुरासंरोप्यसाधोव्रतं साक्षीकृत्याजिनान्गुरूनापिकियत्कालंत्वया पालितं । भक्तुंवाञ्छसिशीतबातबिहतोभूत्वाधुनातद्व्रतं दारिद्रोपहतःस्ववान्तमशनंभुंक्तेक्षुधार्तोपिकिम् ॥ १३ ॥

॥ भाषाटीका ॥

हे साधु तूने प्रथम केवली भगवान और जैनगुरू

नके साथ अट्ठाईस मूलगुण (अहिंसा १ सत्य २ अचौर्य ३ ब्रह्मचर्य ४ परिग्रहत्याग ५ ये पंचमहाव्रत ईर्यासमिति १ भाषासमिति २ एषणा समिति ३ आदाननिक्षेपणा समिति ४ प्रतिस्थापना समिति ५ ये ५ समिति हैं। स्पर्शन १ रसना २ घ्राण ३ चक्षु ४ श्रोत्र ५ इनपांच इंद्रियोंका दमन। सामायक १ तीर्थंकरोंका स्तवन २ वंदना ३ प्रतिक्रमण ४ प्रत्याख्यान ५ कायोत्सर्ग ६ ये छः आवश्यक और भूमिशयन १ स्नानत्याग २ दंतधोवनत्याग ३ वस्त्रत्याग ४ केशलुंच ५ उदंडआहार ६ एकवारलघु भोजन ७) ये धारण किये और कुछ समयलों पाले। अबशीत वायु आदि के खेदसे घबराकर उस प्रतिज्ञा को छोड़ना चाहता है। सो विचार तो सही कि कोईदीन दरिद्री भी भूखसे पीड़ित हुआ अपनी वमनको आप खाताहै ? भावार्थ नहीं खाता है। तो तू त्यागेहुए परिग्रह को क्यों ग्रहण किया चाहता है ? ॥ १३ ॥

अन्येषांमरणं भवानगणयन्स्व स्यामरत्वंसदा देहिन्चिन्तयसींद्रियद्विपवशीभूत्वापरिभ्राम्यसि। अ

द्दाश्वः पुनरागमिष्यतियमो नज्ञाय
तेतत्वतस्तस्मादात्महितं कुरुत्वम
चिराद्धर्म्मंजिनेंद्रोदितम् ॥ १४ ॥

॥ भाषाटीका ॥

हे आत्मा तू औरों के मरण को मरण नहीं गिनता है। इसीसे अपने को सदा अमर विचारता है। इन इंद्रिय समूहरूप हाथीका दबायाहुवा भ्रमंता फिरताहै ठीक यह भी नहीं जानता है कि दुर्निवारकाल कब (कल या परसों आदि कब) अवश्य आवेगा। इस लिये अपना हितकारी सर्वज्ञ केवली का कहाहुआ धर्म तू शीघ्र ही धारण कर ॥ भावार्थ जब काल अचानक आजावेगा तब कुछ भी करतव्य काम न आवेगा इससे पहिलेसेही बीतराग धर्मको धारणकर १४

सौख्यंवाञ्छसिकिन्त्वयागतभवे
दानंतपोवाकृतं नोचेत्त्वंकिमिहैवमे
वलभसेलब्धंतदत्रागतं । धान्यंकिं
लभतेविनापिवपनं लोकेकुटुम्बीज
नो देहेकीटकभक्षितेक्षुसदृशेमोहंवृ
थामाकृथा ॥ १५ ॥

॥ भाषाटीका ॥

हे जीव तू जो सुख की चाहना करता है सो अपने मन में विचार तो सही कि तूने पूर्व जन्ममें कुछ दान दिया था ? वा जप तप संयमरूप पुण्य कर्म किया था ? यदि नहीं कियातो इसलोक में सुख (जो दान पुण्य जप तपादिका फल है) तुझको कैसे मिलेगा? जैसा पूर्व जन्म में किया है उसी के अनुसार तुझे इस जन्ममें प्राप्ति भया है। संसार में यह बात तो प्रसिद्ध है कि संसार में किसान लोग कहीं बिना बोये भी धान्य काटते हैं जो बोते हैं सो ही काटतेहैं। इस लिये कीड़ों के खायेइख समान इस मनुष्य देह में तू वृथा मोह मतकर भावार्थ इसे पाकर कुछ आत्महित करले यही गुरुकी परमोपकारी शिक्षा है ॥ १५ ॥

आयुष्यंतवनिद्रयार्द्धमपरं चायुस्त्रिभेदादहो बालत्वेजरयाकियद्व्यसनतोयातीतिदेहिन्वृथा। निश्चित्यात्मनिमोहपासमधुना संछिद्यबोधासिना मुक्तिश्रीवनितावशीकरणसञ्चारित्रमाराधय ॥ १६ ॥

॥ भाषाटीका ॥

हे आत्मा बड़े शोक वा आश्चर्य का विषय है कि तेरी आयुष्यका आधा भाग तो निद्रावश सोते में जाता है और शेष आधा बाल तरुण वृद्ध अवस्थामें वृथा जाता है बालकपनमें तो खेल तमाशा अज्ञान वश प्रिय लगता है तरुण अवस्थामें नाना प्रकार दुर्विसन सेवन वा व्यापारिक चिंता कलह आदि में समय जाता है वृद्ध अवस्था पौरुष हीन और अनेक रोगोंका घरहै इससे विचारतोकर कियह श्रेष्ठ मनुष्य जन्म पाया तिसमें तूने परमार्थ आत्महित क्याकिया? इससे अब ऐसा निश्चय करके ज्ञानरूप खड्ग से मोहरूप पांसको काट जिससे मोक्षरूप स्त्री को पावे सो तिसको बश करनहारे श्रेष्ठ चारित्र को धारण कर यह चारित्र देवनर्क तिर्यंच गतिमें नहीं धार सकता और इसके धारेबिना मोक्ष लक्ष्मीको नही पासकता ऐसा चित्त में सम्यक् श्रद्धाणकर ॥ १६ ॥

यत्कालेलघुपात्रमण्डितकरोभू
त्वापरेषांगृहे भिक्षार्थंभ्रमसे तदाहि
भवतोमानापमानेनकिम् । भिक्षो

तामसवृत्तितःकदसनात् किंतप्यसेऽहर्निशम् श्रेयार्थंकिलसह्यतेमुनिवरैर्वाधाक्षुधाद्युद्भवाः॥ १७॥

॥ भाषाटीका ॥

हे भिक्षुक हे मुनि ! जिस समय में तू हाथ में छोटा पात्र (कमंडल) लेकर भिक्षा भोजनके अर्थ औरों के (गृहस्थों के) घरों में जाताहै। तिसकालमें तुझे मान अपमानसे क्या (गृहस्थ जो अपनी इच्छा से सरस नीरस भोजन देवे सो ग्रहण कर) दिनरात्रि तापस वृत्ति और अरोचक (प्रकृति विरुद्ध) भोजनों से क्यों दुखी होता है ? देख! अपने कल्याणके अर्थी (चाहनेवाले) महामुनि क्षुधा पिपासादि (भूख प्यास आदि) से उपजी बाधाको समताभावसे (संक्लेश रहित परणामों से) सहते हैं अर्थात् परीषहको जीतते हैं। सो तुझे घबराना उचित नहींहै ॥ १७॥

एकाकीविहरत्यनस्थितबलीवर्दो यथास्वेच्छया योषामध्य रतस्तथा त्वमपिभो त्यक्त्वात्मयूथंयते। त

स्मिंश्चेदभिलाषतानभवतः किम्भ्रा
म्यासिप्रत्यहं मध्येसाधु जनस्यातिष्ठ
सिनाकिंकृत्त्वासदाचारताम ॥ १८ ॥

॥ भाषाटीका ॥

हे यति हे मुनि ! जैसे चंचल (एक जगह न ठहर ने वाला) विजार (अनेक स्त्रियों को रमनेवाला) सांड़ जो स्वजातीय स्त्रियों में (गायोंके समूह में) रतहुआ सो अपने यूथको (बैल समूह को) छोड़कर इच्छा पूर्वक (मनमाना) एकला फिरता है। तैसे ही तू भी विचरे है (फिरता है) जो स्त्रियोंमें तेरी अभिलाषा (प्रीतिकी चाह) नहीं है तो प्रतिदिन क्यों भ्रमता फिरता है ? सम्यक् प्रकारचारित्र को धारण कर साधु जनों के मध्य में क्यों नहीं रहता ? यहां आचार्य शिष्य को ऐसे ताड़नारूप बचन कहते हैं। कारण कि विरक्त साधुओंको रागभाव की पुतली स्त्रियोंमें जाना विराग-ता खोने और कलंकित होने को विपर्यय हेतु है इससे कारण विपर्ययको त्यागना चाहिये ॥ १८ ॥

क्रीतान्नंभवतः भवेतकदशनं रोष
स्तदाश्लाघ्यते भिक्षायांयदवाप्यते

यतिजनैस्तद्भुज्यतेऽत्यादरात् । भिक्षोभाटकसद्म सन्निभतनोः पुष्टिंवृथामाकृथाः पूर्णेकिंदिवसावधौक्षणमपिस्थातुंयमोदास्यति ॥ १६ ॥

॥ भाषाटीका ॥

हे भिक्षुक! (परायेघर भोजन करनेवाला) यदि भोजन तेरे मोलका लिया होता तो स्वादिष्ट न होने पर तू क्रोध भी गृहस्थ दातार पर करता तो फवता अर्थात् शोभादेता। और भिक्षा में तो जैसा भोजन सरस नीरस खार मीठा ठंडा गर्म जो गृहस्थ ने अपने लिये बनवायाहै और उसमें से पुण्यहेतु तुझे भी दिया तो तुझे प्रेमसे खाना चाहिये जिससे गृहस्थ का चित्त न पीड़े। क्योंकि जोकुछ भिक्षा में मिलता है साधुजन उसको अत्यन्त आदर पूर्वक खाते हैं। इस भाड़े के घर समान शरीर को वृथा पुष्टमत कर कारण कि जब आयु के दिनों की अवधि पूरी होजावेगी तब क्या काल तुझे ठहरने देवेगा? भावार्थ आयु पूर्णहोतेही इस शरीर से आत्मा अलग हो परलोक जावेगा। फिर इससे अधिक प्रेम किसकाम आवेगा इसलिये शरीर से अ-

धिक राग मतकर यही तेरेलिये परम शिक्षा है ॥१९॥

लब्ध्वार्थंयदिधर्म्मदानविषयेदातुं नयैः शक्यते दारिद्रोपहतास्तथापि विषयासक्तिंनमुञ्चन्तिये। धृत्वाये चरणं जिनेंद्रगदितंतस्मिन्सदानाद रास्तेषांजन्मनिरर्थकंगतमजाकण्ठे स्तनाकारवत ॥ २० ॥

॥ भाषाटीका ॥

जो मनुष्य धनको पाकरे दान पुण्य में नहीं लगाते हैं रात्रि दिन फिर भी कमाई २ में मरते पचते हैं ऐसे सूमों का जन्म तथा जो निर्धन हैं जिनके रहनेको टूटी झोंपड़ी है पहिरने को फटे मैले वस्त्र किंचिन्मात्र माटी के वर्तनों में कुसमय शाक भांजीसे पेट भरते हैं तोभी बिषय बासना को नहीं छोड़ते न सच्चारित्र को ग्रहण करते हैं। और जो भगवत प्रणी चारित्रको ग्रहणकर उसमें सदा अनादरसे वर्तते हैं उस चारित्र में शिथिल रहते हैं तिन सबका मनुष्य जन्म बकरी के गलेके स्तन समान निकाम है व्यर्थ है॥ २० ॥

लब्ध्वामानुषजाति मुत्तमकुलम्
रूपंचनीरोगताम् बुद्धिंधीधनसेवनं
सुचरणंश्रीमज्जिनेंद्रो दितम् । लो
भार्थंवसुपूर्णहेतु भिरलंस्तोकायसौ
ख्यायभो देहिन्देहसुपोतकंगुणभृतं
भक्तुंकिमिच्छास्तिते ॥ २१ ॥

॥ भाषाटीका ॥

हे आत्मा! मनुष्य जन्ममें उत्तम जाति कुलको पाया है (यदि म्लेच्छ शूद्र होता तो क्या उत्तम आचरण करसक्ता?) और रूपवान सुन्दर निरोग शरीर पाया है रोगीहोता तो क्या धर्म कर्म आचरण कर सकता? फिर ज्ञान और अच्छे पंडितो का सत्संग मिला है और श्रीमज्जिनेंद्र का कहाहुआ चारित्र भी तूने पाया है यह सर्व दुर्लभ २ सामग्री पाकर अब तू लोभ के वश होकर धनकी चाहना को पूर्ण करने के हेतु किंचिन्मात्र क्षण भंगुर सुखकी वांछाकर सर्व गुणरूप रत्नोकर भराहुआ यह शरीररूप जहाज संसार समुद्र से पार करने वाला तिसके तोड़ने को (विनाशको)

तेरीबुद्धि क्योंकर भरपूर होरही है ? बडे खेदका विषय है कि श्रीगुरु का उपदेश तेरे चित्त में प्रवेश नहीं करता है ॥ २१ ॥

बेतालाकृतिमर्द्धदग्धमृतकंदृष्ट्वा भवन्तंयते यासांनास्तिभयंत्वयासमम होजल्पन्तितास्तत्पुनः। राक्षस्योभुवनेभवन्ति वनितामामागताभक्षितुं मत्वैवंप्रपलाप्यतांमृतिभयात्वंतत्रमास्थाःक्षणं ॥ २२ ॥

॥ भाषाटीका ॥

हेमुनि ! जिन तरुण स्त्रियोंको तेरा प्रेतके आकार अधजले मुर्दावत भयंकर कुरूप देखकर भी भय नहीं होता और तेरेसाथ प्रेम पूर्वक बचनालाप करती हैं सो स्त्रियां संसार में महा भयावनी राक्षसी हैं तिनको देखकर तू अपने मनमें ऐसा विचारकर कि ये मायाविनी मेरे खानेको (नाशकरने को) आई हैं ऐसा मनमें दृढ़ निश्चयकर मरनके भयसे तिनके सन्मुखसे शीघ्र ही भाग तहां क्षणमात्र मत ठहर नहीं तो वे तेरा चारित्ररूप धन और ज्ञानरूप प्राण हरलेवेंगी ऐसा निश्चय जान ॥ २२ ॥

मागास्त्वंयुवतीगृहेषु सततंविश्वासतांसंसयो विश्वासेजनवाच्यतांभवतितेनश्येत्पुमर्थह्यतः । स्वाध्यायानुरतोगुरूक्त वचनंशीर्षे समारोपयंस्तिष्ठत्वं विकृतिं पुनर्व्रजासिचेद्यासित्वमेवक्षयम् ॥ २३ ॥

॥ भाषाटीका ॥

हे मुनि तू निरन्तर (प्रतिदिन) स्त्रियों के घरमें (निवासस्थान में) विश्वास मतकर अर्थात् निडर हो तहां न बैठ। नहीं तो ऐसा विश्वास करने से तेरी लोक में हास्य होगी सबलोग तेरी ओर से सन्देह करेंगे और आपस में कहेंगे कि ये महात्मा नारी भक्त हैं। तब तेरा सर्व पुरुषार्थ धर्ममोक्ष का साधन नाश हो जावेगा। इसहेतु से तू अब धर्मशास्त्रोंके स्वाध्याय में लीनहुआ सुगुरुकी उत्तम शिक्षाको अपने मस्तक पर रख अर्थात् उससुगुरु शिक्षाको सर्वोपरिमान तपोवनमें निवासकर और जो न मानेगा अर्थात् सुगुरु शिक्षा के विपरीत चलेगा (आचरण करेगा) तो

इसमें तेरी महाहानि होगी अर्थात् संगसे निकाला जायगा तप से भ्रष्ट हो लोक निंद्य होगा ॥ २३ ॥

किंसंसकारशतेन विट्जगतिभो: काश्मीरजंजायते किंदेह:शुचितांब्रजेदनुदिनंप्रक्षालनादम्भसा।संस्कारोनखदन्तवक्रबपुषां साधोस्त्वयायुज्यतेनाकामीकिलमण्डनप्रियइतित्वंसार्थकंमाकृथा: ॥ २४ ॥

॥ भाषाटीका ॥

हे मुनि क्या सौ १०० संस्कारोंसे भी संसार में विष्टा (मल) केसर हो सकता है ? अर्थात् मैले में सैकड़ों सुगंधित वस्तुयें मिलाने से भी केसरके गुणों को (रंग गंध स्वादादि को) वह नहीं पहुंच सकता । तैसेही शरीरभी प्रतिदिन के स्नानसे क्या शुद्ध होसकताहै? अर्थात् नहीं होसकता है स्नानसे किंचित कालको ऊपरी देहका मल धुलही गया तो भीतर से मलमूत्र पसीना आदि उसे शीघ्रही फिर मैला करदेतेहैं । और अंतरंग में कुटिल भाव जनित जोपापरूप मल भरा

है वहतो पानी में पैठे (घुसे) रहते भी नहीं धुल सकता है और नख दांत केश और मुखका शृंगार तू करता है इससे तो तू मंडन प्रिय कामी प्रगटपने दृष्टि पड़ता है। वीतराग अकामी नहीं होसकता इससे जो ऐसा करनाहै तो सार्थक नाम यति मतरखवा अर्थात् कुलिंगी वेशी नाम रखाना योग्य है॥ २४॥

वृत्तैर्विंशतिभिश्चतुर्भिरधिकैःसल्लक्षणीनान्वितै ग्रंथंसज्जनचित्तवल्लभमिमंश्रीमल्लिषेणोदितं। श्रुत्वास्वेंद्रियकुञ्जरान्समटतो रुन्धन्तुतेदुर्जरान् विद्वान्सो विषयाटवीपुसततंसंसारविच्छित्तये॥ २५॥

॥ भाषाटीका॥

विद्वानलोग चौवीस शार्दूलविक्रीड़ित छंदों में श्रीमत् मल्लिषेणनाम आचार्य के वनायेहुए इस परमोत्तम लक्षण युक्त ग्रंथको सुनकर अपनी चंचल और मस्त मानोहस्ती ज्यों स्वच्छंद होकर विषयरूप बन में चारों ओर घूमता है भटकनेवाली इंद्रियों को रोको

कैसी हैं इंद्रियां महादुर्जेय जो कठिनता से जीती जा सकती हैं तिनको संसार (भव भ्रमण) के नाश के लिये रोको अर्थात् अपने वशीभूत करके जप तपादि सम्यक् चारित्र में लगावो इसी में तुम्हारा परम कल्याण है और यही श्रीगुरुकी परम हितकारिणी श्रेष्ठ शिक्षा है ॥ २५ ॥

इति श्री सज्जनचित्तवल्लभ काव्य समाप्तम् भाषाटीका मुंशी नाथूराम लमेचू रचित शुभम्भूयात् ॥



